पेरिस
१६ जून, २००६

संदेश संख्या– ८६

निर्विकल्प और निर्विचार की अवस्था ही प्रज्ञा है

'चुनो नहीं, सुनो ।'
'मानो नहीं, जानो ।'
'संवाद नहीं, सन्नाटा ।'

संदेश ८१ में हमलोगों ने लाहिड़ी–श्रुति– 'भागो नहीं', जागो' को सुना था जिसमें सुझाव दिया गया है कि संबंधों और उत्तरदायित्वों से भागें नहीं अपितु संबंधों को दर्पण मानकर स्वाध्याय की प्रक्रिया को मजबूत करें ताकि हमलोग संबंधों में रहने के बावजूद निर्बंध अर्थात् चैतन्य के प्रति जागृत हो सकें तथा मन के बुने जाल से बाहर आ सकें ।

अब लाहिड़ी–श्रुति से लिए गए उपर्युक्त मधुर–श्रुतियों के ऊपर एक–एक कर ध्यान करें :–'चुनो नहीं, सुनो ।

हमलोग पूर्ण अवधान (attention) के साथ नहीं सुन पाते क्योंकि शरीर की विभेदकारी चित्तवृत्ति यानी कि मन में अत्यधिक विभाजन के कारण ''मैं'' सदा सावधान रहता है और शीघ्र ही अतीत के दबावों, पूर्वाग्रहों, आसक्तियों, सामाजिक–सांस्कृतिक परम्पराओं एवं गहरे अनुबंधन के कारण विकल्पों, चुनावों एवं वर्गीकरण में फँस जाता है। इस तरह पूर्वाग्रह से मुक्त न होने, और प्रयत्न– शैथिल्य तथा प्रेम की अवस्था के उपलब्ध न होने के कारण हमलोग सुन नहीं पाते हैं। खण्डित श्रोता के अनवरत हस्तक्षेप के कारण सुनना होता ही नहीं। और यही समझदारी में मौलिक–परिवर्तन तथा चित्तवृत्ति में मौलिक रूपान्तरण को रोकता है। ''मैं'' चेतना में मिथ्या विभाजन है किन्तु इसे कई अन्य सन्तोषप्रद एवं मनोनुकूल नामों से भी जाना जाता है, यथा–दिव्यात्मा, आत्मा, जीवात्मा, अन्तरात्मा, वैयक्तिकता, व्यक्तित्व, ज्योति, मन, अहंकार, सूक्ष्मशरीर आदि । हमलोग इसी ''मैं'' के पुनर्निर्माण, पुनर्समायोजन एवं पुनर्परिष्करण में व्यस्त रहते हैं और इसीलिये अशान्ति की इस अवस्था के कारण सुन नहीं पाते। मुक्ति (चैतन्य) की अनुभवरहित झलक जिस शरीर को मिल चुकी हो उसको सम्पूर्णता में सुनना मूलभूत शर्त है । यही स्वाध्याय है । यह श्रोता को तत्क्षण मुक्ति में विस्फोट कर सकता है किन्तु श्रोता में स्थित अहंकार ('मैं' का विभेदकारी भाव) के कारण ऐसा घटित नहीं हो पाता । अतः भगवान के लिए, कृपया बार–बार सुनें । यदि पूर्णता में सुनना हो जाय तो निश्चित ही अचानक कभी मुक्ति में विस्फोट हो जाएगा और उसे उसका पता भी नहीं होगा। सुनते समय किसी भी चीज की आकांक्षा न करें। सभी आकांक्षायें अहंकार की ही यात्राएँ हैं और अहंकार की सभी यात्राएँ गलत दिशा में की गई यात्राएँ हैं न कि परम पवित्र की दिशा में।

'मानो नहीं, जानो ।'

अर्थात् मानसिक उद्यम में न फँसकर समझदारी की स्वतंत्रता प्राप्त करें । केवल सहमत या असहमत न हों, बल्कि यथार्थता को उपलब्ध हों ।

हमलोग किताबों से ली गई या आध्यात्मिक मंडी के धूर्त्तों से ली गई उधारी जानकारी के दलदल में फँस जाते हैं । उधारी जानकारी तकनीकी दुनिया में उपयोगी है किन्तु हमारे धार्मिक एवं आध्यात्मिक संदर्भों में, अपने लिए सत्य की खोज स्वयं द्वारा प्रतिक्षण और बार–बार करनी होगी। कोई भी धर्मशास्त्र या कोई भी विश्वासपद्धति या अवधारणा हमारी मूर्खतापूर्ण भ्रांतियों से छुटकारा नहीं दिला सकती । 'मानो नहीं, जानो'–यह अवधारणाओं और निष्कर्षों की दुनिया से परे प्रत्यक्षबोध की दुनिया में आने के लिए छोटा किन्तु मधुर आमन्त्रण है ।

''सम्वाद नहीं, सन्नाटा''। अर्थात् व्यर्थ का वाद–विवाद नहीं, केवल निःशब्दता और निर्विचार की अवस्था । उत्तेजना एवं तत्जनित वेदना के कारण विचार हमेशा चलता रहता है। विचार अपने को बचाये रखने के लिए एक विचारक को खड़ा करता है, प्रक्षेपित करता है। जब विचार विचारक को खड़ा किए बिना स्वयं के प्रति सजग होता है तो यह आवश्यक दैनिक कार्यों को करने के लिए समन्वयकर्त्ता के रूप में कार्य करता है । तब कभी–कभी विचारों का चलना रुक जाता है और ड़िगर गहरे सन्नाटा की दिव्यता संभव होती है । किन्तु 'विचारक' निराशोन्मत्त रूप से ईश्वर और विश्वास,आत्मा और पुनर्जन्म, स्वर्ग और नरक आदि के माध्यम से स्वयं को सततता एवं स्थायित्व देने की कोशिश करता है । सर्वव्यापक चैतन्य की शून्यता एवं ऊर्जा की परमशान्ति में मिलनेवाले परमानन्द का अनुमान 'विचारक' की गतिविधियों से नहीं किया जा सकता।

अपने मन द्वारा निर्मित सभी उपायों, सुरक्षा–तैयारियों तथा निर्भरता को अचानक समाप्त हो जाने दो ताकि तुम्हारे शरीर में जीवन नृत्य कर सके। रास्ते का एक तुच्छ घास का तृण बार–बार पैर से दबकर आकस्मिक–मृत्यु को प्राप्त होता है किन्तु मृत्यु को देख पाने की प्रज्ञा के कारण वह बार–बार पुनर्जीवन को उपलब्ध होता है तथा जीवन उसमें पुनः नृत्य करने लगता है । सृजन विचारक के हाथों में कभी नहीं होता। 'विचारक' जब अपने अहंकार एवं पूर्वाग्रह, आग्रह एवं दम्भ, भ्राचार एवं भ्रांति के साथ प्रबल होता है तब सृजन रुक जाता है। उस पूर्ण के अनाममय अस्तित्व की गतिशीलता ही सृजन है जो शून्यता का ही पर्याय है। यह कभी भी विचारक की अभिव्यक्ति नहीं हो सकती।

जय सन्नाटा